प्रगति के प्रतीक भारत के सपूत

'पराग' प्रदीप

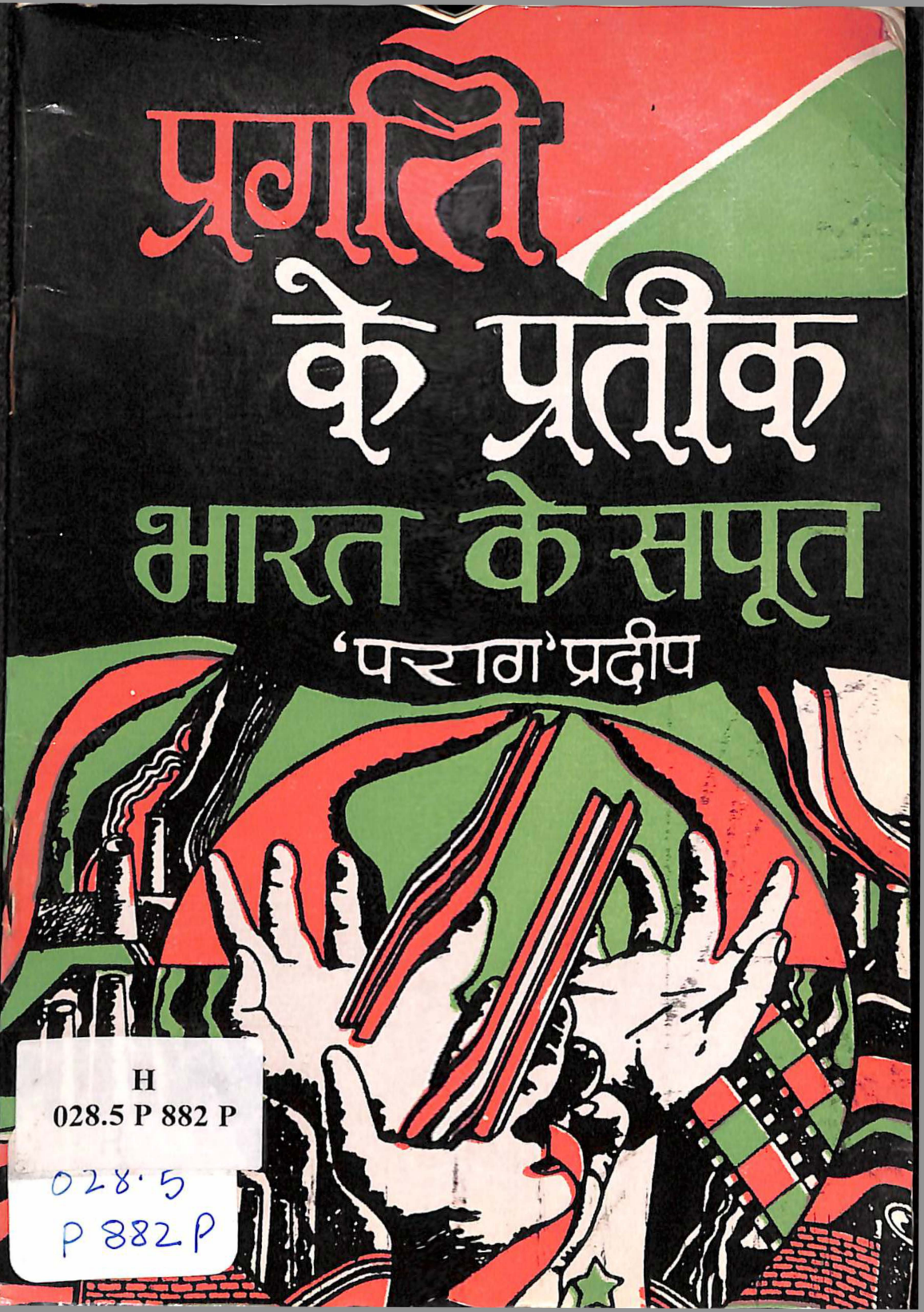

H
028.5 P 882 P
028.5
P 882 P

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

प्रगति के प्रतीक
भारत के सपूत

'पराग' प्रदीप

CATALOGUED

कवि सभा दिल्ली
30/106, गली नं०-7, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110 032

H
028.5
P882P

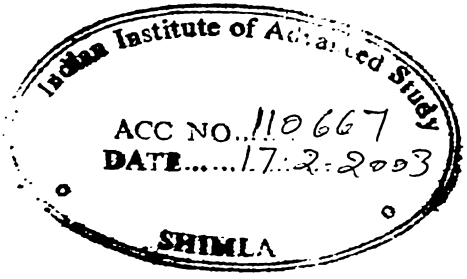

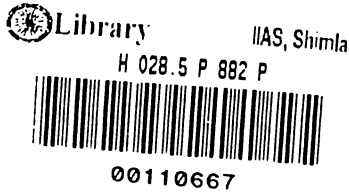

© 'पराग' प्रदीप

प्रकाशक : कवि सभा दिल्ली
30/106, गली नं. 7,
विश्वास नगर, शाहदरा
दिल्ली-32

संस्करण : 1997

मूल्य : 20/-

शब्द-सज्जा : त्यागी लेज़र प्रिंट्स
सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

Pragati Ke Prateek : Bharat Ke Spoot
(Biography) by 'PARAG' PRADEEP

अनुक्रम

1.	डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया	5
2.	चन्द्रशेखर वैंकट रमण	9
3.	जे. आर. डी. टाटा	13
4.	सत्यजित रे	16
5.	डॉ. शांति स्वरूप भटनागर	22
6.	डॉ. होमी जहांगीर भाभा	28

आधुनिक भारत के निर्माता—डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया

कुछ व्यक्ति जन्म से महान पैदा होते हैं और कुछ अपनी मेहनत से महान बन जाते हैं। परिश्रम को ही अपने जीवन का मूल-मंत्र मानने वाले डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया का जन्म कर्नाटक राज्य के कोलार जिले के चिकवल्लापुर गाँव में 15 सितम्बर, 1861 ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीनिवास शास्त्री था। वे एक अच्छे ज्योतिष एवं वैद्य थे, जो धर्म में विशेष आस्था रखते थे।

डॉ. विश्वेश्वरैया का बचपन अभावों तथा संकटों में बीता, क्योंकि इनके माता-पिता बहुत गरीब थे। इससे इनकी पढ़ाई का खर्च भी ठीक ढंग से नहीं चल पाता था। कुशाग्र बुद्धि और परिश्रमी होने के कारण वे छोटी कक्षाओं के छात्रों को ट्यूशन पढ़ाकर अपनी पढ़ाई का खर्चा चलाते और अपनी कक्षा में भी हमेशा प्रथम स्थान प्राप्त करते। 15 वर्ष की आयु में पिता का देहान्त हो जाने के कारण अपने मामा के यहाँ बंगलौर चले गए। वहीं पर हाई-स्कूल की शिक्षा प्राप्त करके सेंट्रल कॉलेज में प्रवेश ले लिया। कॉलेज के प्राधानाचार्य मि. वाट्स उनकी प्रतिभा और परिश्रम से अत्याधिक प्रभावित हुए और एक बार उन्होंने विश्वेश्वरैया को सोने के बटन भी दिये।

सन् 1880 ई. में बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर मि. वाट्स की सिफारिश से पूना के साइंस कॉलेज में इंजीनियरिंग की कक्षा में उन्हें प्रवेश मिल गया। विश्वेश्वरैया ने इस परीक्षा में भी विशेष योग्यता सहित प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके लिए इन्हें **'जेम्स वर्कले'** पुरस्कार भी मिला।

प्रथम श्रेणी में इंजीनियरिंग की परीक्षा उत्तीर्ण करने के फलस्वरूप 23 वर्ष की आयु में ही बंबई के लोक निर्माण विभाग में सहायक अभियन्ता के पद पर नियुक्त हो गए।

डॉ. विश्वेश्वरैया एक अनुशासन प्रिय व्यक्ति रहे और जो भी कार्य करते योजना पूर्वक व नियमानुसार ही करते थे। अंग्रेज इंजीनियर भी उनकी योग्यता को स्वीकार करते थे। विश्वेश्वरैया शहरों के लिए पानी के इन्तजाम और गन्दे पानी की निकासी के लिए नाली-निर्माण की योजना में प्रसिद्ध हो गए। उन्होंने कई नगरों को स्वर्ग बना दिया।

सन् 1893 ई. में सिन्ध प्रदेश के सक्खर नामक शहर में पानी का इन्तजाम करने के लिए इन्हें बुलाया गया। वहाँ रेगिस्तान के कारण पानी की बहुत कमी थी। विश्वेश्वरैया ने उस रेगिस्तान की चुनौती को स्वीकार कर लगभग एक साल में ही 'सक्खर बैराज' और 'वाटर वर्क्स' बनाकर वहाँ के मरुस्थल को हरा-भरा बना दिया।

सन् 1907 ई. में एडन शहर की जल सप्लाई और

सफाई की बहुत अच्छी योजना बनाई। पूना के पास ही खड़गवासला नामक स्थान पर बाँध के ऑटोमैटिक गेट बनाकर सबको चौंका दिया। फिर सन् 1908 में उन दिनों का भारतीय इंजीनियरों के सबसे बड़े पद सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर नियुक्त हो गये। किन्तु स्वाभिमानी व

आत्म-सम्मान का प्रतिक्षण ध्यान रखने वाले डॉ. विश्वेश्वरैया को जब कुछ अंग्रेज अधिकारियों ने नीचा दिखाने की कोशिश की तो अपने भविष्य की चिन्ता न करते हुए 47 वर्ष की आयु में ही सरकारी नौकरी छोड़ दी और स्वतंत्र होकर देश की सेवा करने लगे।

मैसूर के महाराजा कृष्णराज ने सन् 1912 ई. में डॉ. विश्वेश्वरैया को अपनी रियासत का दीवान बना दिया। नौ वर्ष मैसूर में रहकर वहाँ की काया ही पलट दी। कावेरी नदी पर कृष्णराज सागर बाँध, मैसूर का वृन्दावन गार्डन, भद्रावती स्टील कारखाना, साबुन, चन्दन तेल का कारखाना आदि इनकी कला के अच्छे उदाहरण हैं।

उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर ही सन् 1930 ई. में उन्हें बंबई विश्वविद्यालय ने 'डॉक्टर', कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 'डॉक्टर ऑफ लॉ' और अन्य भी कई विश्वविद्यालयों ने अपनी-अपनी मानद उपाधियों से विभूषित किया था। अंग्रेज सरकार ने भी डॉ. विश्वेश्वरैया को 'सर' का खिताब देकर सम्मानित किया था। आधुनिक युग का यह विश्वकर्मा और कोलार की स्वर्णिम घाटी का रत्न सन् 1955 ई. में भारत सरकार की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित होकर **'भारत रत्न'** बन गया।

उपाधियाँ और मान सम्मान प्राप्त कर लेने से कोई व्यक्ति महान नहीं बन जाता, उसे उसके कार्य महान् बनाते हैं। 101 वर्ष की आयु में 14 अप्रैल, 1962 ई. को डॉ. विश्वेश्वरैया का देहान्त हो गया। उनके द्वारा किये गए कार्य हमेशा उनकी यश-गाथा कहते रहेंगे। आधुनिक युग उनका ऋणी है।

महान वैज्ञानिक—चन्द्रशेखर वेंकट रमण

प्राचीन काल से ही भारत ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे रहा है। संसार के अन्य देश जिस समय अज्ञान के अन्धकार में डूबे थे, उस समय भी भारत अपने ज्योतिष, गणित और रसायन संबंधी ज्ञान के लिए विश्व प्रसिद्ध था।

भारत की वैज्ञानिक प्रतिभा को विश्व के अन्य देशों की तुलना में खड़े करने वाले महान् वैज्ञानिकों में श्री चन्द्रशेखर वेंकट रमण का नाम गर्व के साथ लिया जाता है।

श्री चन्द्रशेखर वेंकट रमण का जन्म एक विद्या प्रेमी अय्यर परिवार में दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य के तिरुच्चिरापल्ली नगर के निकट बसे थिरुवगिइक्कवल नामक ग्राम में 7 दिसम्बर 1888 ई. को हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमति पार्वती अम्मल और पिता का नाम श्री चन्द्रशेखर अय्यर था। इनके पिता विशाखापट्टनम के एक कॉलेज में प्राध्यापक थे। उनकी गणित, भौतिकी विज्ञान और खगोल विज्ञान में गहरी रूचि थी। वेंकट रमण की बुद्धि बचपन से ही तेज होने के कारण इनकी रूचि भी इन्हीं विषयों की ओर हो गई।

श्री रमण ने केवल 12 वर्ष की आयु में ही मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। उसके बाद 16 वर्ष की

आयु में भौतिक विज्ञान में बी.ए. की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके लिए इन्हें **'अर्णी स्वर्ण पदक'** प्रदान किया गया।

सन् 1906 ई. में एम. ए. करने के उपरान्त रमण अखिल भारतीय वित्त प्रतियोगिता की परीक्षा में बैठे और उसमें भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। फलस्वरूप वे कलकत्ता के वित्त विभाग में उप-महालेखाकार के पद पर नियुक्त हुए। वित्त में काम करते हुए भी श्री रमण की विज्ञान में रुचि कम नहीं हुई। वे कलकत्ता में विज्ञान विकास संघ के सदस्य बन गए और प्रयोगशाला में अनुसंधान करने लगे। उन्होंने यहाँ अनेक चमत्कारपूर्ण खोजें की, जिनसे उनका यश विदेशों तक में फैल गया। शीघ्र ही इन्हें वैज्ञानिक के रूप में मान्यता मिल गई।

इसी बीच श्री रमण का ट्रांसफर रंगून के लिए हो गया। वहाँ उन्हें वैज्ञानिक प्रयोगों का मौका नहीं मिला। परंतु उनके मन में नई खोजों की धुन सवार थी। वे विज्ञान की अनेक पुस्तकों के अध्ययन में जुटे रहे। अचानक पिताजी का देहान्त हो जाने पर वे रंगून से मद्रास चले आये। यहाँ आकर उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज की प्रयोगशाला में वैज्ञानिक परीक्षण करने शुरू कर दिये।

सन् 1911 ई. में महालेखाकार बनकर, पुनः कलकत्ता पहुँच गए। फिर क्या था, वे जोर-शोर से फिर से विज्ञान अनुसंधानों में जुट गए। यहाँ रहकर उन्होंने बहुत से

परीक्षण किये और अनेक पुस्तकें लिख डाली। कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री आशुतोष मुखर्जी उनके वैज्ञानिक आविष्कारों से अत्यन्त प्रभावित हुए। अतः सन् 1917 ई. से कलकत्ता में विज्ञान कॉलेज की स्थापना होने पर तत्कालीन उपकुलपति श्री आशुतोष मुखर्जी के आग्रह पर श्री वैंकट रमण सरकारी नौकरी छोड़ भौतिकी विज्ञान के प्रोफेसर बन गए।

सन् 1921 ई. में श्री वैंकट रमण कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से यूरोप गए, जहाँ इन्होंने अपने खोजपूर्ण विचारों से विदेशी वैज्ञानिकों को काफी प्रभावित किया। भारत और यूरोप की यात्रा के दौरान जब जहाज भूमध्य सागर की गहराई वाले क्षेत्र से गुजर रहा था, तब रमण ने भूमध्य सागर की जल राशि को नीलमणि के समान चमकता देखा तो विचारों में खो गए। मन में प्रश्न उठा कि पानी का रंग नीला क्यों है? उनके मन में अंकित इस प्रशन का उत्तर ही संसार भर में प्रसिद्ध उनका आविष्कार 'रमण प्रभाव' के नाम से जाना जाता है। इस पर सन् 1930 ई. में उन्हें विश्व का सबसे बड़ा सम्मान **'नोबेल पुरस्कार'** दिया गया।

इस खोज में रमण ने विश्व के वैज्ञानिकों को बताया कि किसी पदार्थ से विकीर्ण होते समय प्रकाश के रंगों में परिवर्तन हो जाता है। श्वेत प्रकाश जब रंगीन पदार्थ पर पड़ता है तो वह विकीर्ण होकर पदार्थ के रंग के

अनुसार रंग बदल लेता है। यह आविष्कार प्रकाश विज्ञान से सम्बन्धित था। इसके अलावा इन्होंने ध्वनि विज्ञान के सम्बन्ध में भी अनेक खोजें की। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक हो जाने पर उन्हें विभिन्न स्वदेशी और विदेशी विश्वविद्यालयों से भाषणों के लिए निमन्त्रण मिलने लगे। 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' ने श्री रमण को अपना अध्यक्ष चुना और लन्दन की रॉयल सोसायटी ने उन्हें अपना फैलो सदस्य बनाया।

उनके आविष्कारों की सबसे बड़ी बात यह है कि वे विश्व-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हैं। श्री चन्द्रशेखर वैंकट रमण के इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर भारत सरकार ने उन्हें सन् 1954 ई. मे भारत के सर्वोच्च अलंकरण **'भारत-रत्न'** से सम्मानित किया। रूस सरकार ने भी उन्हें 1957 ई. में **'लेनिन पुरस्कार'** और विश्व के अन्य अनेक देशों ने भी अपने-अपने अलंकरणों से सम्मानित कर श्री रमण के आविष्कारों की खुले दिल से सराहना की थी।

विश्व में भारत की पहचान बनाने वाले इस महान विज्ञानी का 21 नवंबर, 1977 ई. को निधन हो गया। विज्ञान के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान करने वाले चन्द्रशेखर वैंकट रमण की लगन, मेहनत और संकल्प शक्ति हमें हमेशा प्रेरणा देती रहेगी।

औद्योगिक प्रगति के संबल—जे. आर. डी. टाटा

भारत के औद्योगिक आधुनिकीकरण में जहांगीर रतन जी दादा भाई टाटा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

जे.आर.डी. के नाम से प्रसिद्ध देश के मशहूर उद्योगपति श्री जहांगीर रतनजी दादा भाई टाटा का जन्म 29 जुलाई 1904 ई. को पेरिस में हुआ था। इनके पिता श्री रतनजी दादा भाई टाटा सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री जमशेद जी टाटा के चचेरे भाई थे। इनकी मां का नाम सुसन था। वे एक फ्रांसीसी महिला थीं।

अपने पांच भाई-बहनों में तीन से बड़े जे.आर.डी. की प्रारम्भिक शिक्षा फ्रांस में ही हुई। बचपन में जहांगीर काफी नटखट तथा मजाकिया स्वभाव के थे। खेलकूद में खासकर हॉकी में इनकी विशेष रूचि थी। कविता, संगीत और मोटरकार से इनको बाल्यकाल से ही लगाव रहा।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय जहांगीर के पिता ने इन्हें हिन्दुस्तान बुला लिया था। इसी बीच मां को यक्ष्मा रोग हो जाने के कारण इन्हें मां के साथ जापान जाना पड़ा और वे दो वर्ष वहीं रहे. तथा वहीं शिक्षा ग्रहण की। उच्च शिक्षा हेतू जे.आर.डी. फिर इंग्लैंड चले गए।

भारत लौटने के बाद जे.आर.डी. सन् 1925 ई. में

टाटा संस्थान में अवैतनिक अप्रैंटिस के पद पर नियुक्त हुए। 22 वर्ष की आयु में पिता के स्वर्गवास हो जाने पर परिवार की जिम्मेदारी इनके कंधों पर आ गई।

जहांगीर की बचपन से ही विमान चालक बनने की इच्छा थी। पेरिस में इनके परिवार के नजदीक ही लुई ब्लेरियट भी रहते थे, जो कि इंग्लिश चैनल को हवाई जहाज द्वारा पार करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। जहांगीर अक्सर ब्लेरियट के विमान को देखा करते थे। हवाई जहाज में उड़ने का पहला अवसर जे.आर.डी. को ब्लेरियट के ही सान्निध्य में मिला। फिर 3 फरवरी, 1929 ई. जहांगीर ने पहली बार अकेले ही उड़ान भरी और एक सप्ताह के अन्दर ही इन्हें फैडरेशन एयरोनॉटिक इंटरनेशल की ओर से एयरो क्लब ऑफ इंडिया एंड बर्मा द्वारा विमान चालक का लाइसेंस दे दिया गया। अपने सपनों को साकार करते हुए 1929 ई. में जे.आर.डी. आगा खां उड्डयन प्रतियोगिता में प्रथम आए।

अपने पिता की मृत्यु के बाद टाटा एण्ड सन्स के निदेशक बने जहांगीर ने 1930 ई. में 'टाटा एयर लाइन्स' सेवा की शुरूआत की। 15 अक्तूबर 1932 ई. को कराची से डाक लेकर प्रातः साढ़े छः बजे बम्बई के लिए उड़े और पांच घंटे में बम्बई पहुंच गए। इस हवाई जहाज का नाम 'पुस माउथ' था। इसके उपरान्त आप उड्डयन की दुनिया में सफलता के प्रतीक बन गए। यही 'टाटा

एयर लाइन्स' बाद में चलकर 'एयर इंडिया' बन गई।

आपकी कर्मठता और राष्ट्र विकास सम्बन्धी सराहनीय सेवाओं को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने 1954 ई. में आपको 'पद्म विभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया। 1966 ई. में तत्कालीन राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने इन्हें 'एयर कोमोडोर' के मानद पद पर नियुक्त किया था। 1978 ई. आपको 'टानी जानुस' सम्मान दिया गया। 1986 ई. में अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संस्था ने आपको 'एडवर्ड वार्नर' सम्मान से विभूषित किया था। इसके अलावा आपको 1988 ई. में वायुयान सेवा में विशिष्टता के लिए 'गुगल हेईम मेडल' तथा 1989 ई. में मानव सेवा के लिए 'दादा भाई नौरोजी' सम्मान और स्किइंग में दक्षता के लिए दूसरा सर्वोच्च सम्मान 'केन्वायस ब्रांज' भी प्रदान किये जा चुके हैं।

देश की प्रगति में जे.आर.डी. टाटा का अनुठा एवं बहुमूल्य योगदान रहा है। इन्हीं विशिष्ट सेवाओं को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1992 ई. में भारत की सर्वोच्च मानद उपाधि **'भारत रत्न'** से श्री जहांगीर रतन जी दादा भाई टाटा को विभूषित किया गया।

1994 ई. में श्री जे.आर.डी. टाटा काल की गोद में हमेशा के लिए सो गए, किन्तु उनकी सेवाएं हमेशा उनका स्मरण कराती रहेंगे।

भारतीय सिनेमा के पर्याय—सत्यजित रे

भारतीय सिनेमा को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित करने वालों में अहम भूमिका निभाने वाले श्री सत्यजित रे अपने निकट सम्बन्धियों तथा दोस्तों में 'माणिक दा' के नाम से मशहूर थे। आपका जन्म 2 मई सन् 1921 ई. को कलकत्ता के कला सम्पन्न परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री सुकुमार राय मशहूर व्यंग्य लेखक, चित्रकार और अच्छे कवि थे। माँ सुपर्णा राय अपने जमाने की विख्यात गायिका थीं। इस प्रकार सत्यजित रे को साहित्य, संगीत और कला विरासत में मिले थे। सन् 1934 ई. में 34 वर्ष की अल्पायु में ही आपके पिता चल बसे और सत्यजित को अपना बचपन अपने मामा के यहाँ बिताना पड़ा।

आपने बालीगंज के सरकारी स्कूल से हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1940 ई. में प्रेसीडेंसी कॉलिज से स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली। आपने जीव विज्ञान, रयासन शास्त्र, भौतिक शास्त्र और अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उसेक बाद आप शांतिनिकेतन चले गए। वहाँ पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की आशीष-छाया में आर्ट सेंटर में विद्याध्ययन करने लगे। विश्व भारती में तीन वर्ष तक चित्र कला की पढ़ाई की।

इसके बाद आपने कलकत्ता की एक ब्रितानी विज्ञापन

एजेंसी में व्यावसायिक कलाकार के रूप में काम करना शुरू कर दिया। आप जल्द ही वहाँ पर कला-निर्देशक बन गए, लेकिन आपकी रूचि तो फिल्मों में थी। इसलिए

सन् 1947 ई. में आपने अपने कुछ सहयोगियों एवं मित्रों के साथ मिलकर 'कलकत्ता फिल्म सोसाइटी' की स्थापना कर दी। 1949 ई. में श्री रे की मुलाकात मशहूर फिल्म निदेशक रेनवां से हो गई। रेनवां उन दिनों 'रिवर' नामक फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में कलकत्ता पधारे थे।

सन् 1950 ई. में सत्यजित रे लन्दन गए। वहाँ साढ़े चार मास के प्रवास काल में आपने लगभग सौ फिल्में

देखीं। आप इन फिल्मों से इतने प्रभावित हुए कि इंग्लैंड से लौटते वक्त अपनी समुद्र यात्रा के दौरान ही आपने 'पाथेर पांचाली' नामक पटकथा लिख डाली। इस कहानी पर बनी फिल्म ने उन्हें संसार भर में एक महान कलाकार के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया।

इस फिल्म के निर्माण के लिए रे के पास पर्याप्त पैसा न होने के कारण उन्हें अपनी पत्नी के गहने तक बेचने पड़े। फिर भी कमी पड़ी तो पश्चिम बंगाल सरकार से ऋण ले लिया। इस फिल्म निर्माण के दौरान उन्होंने अनेक बाधाओं की चट्टानों को तोड़ा था। 1955 ई. में बनकर तैयार हुई यह फिल्म 'पाथेर पांचाली' बंग्ला भाषा में थी। फिल्म उद्योग में यह फिल्म 'मील का पत्थर' बन गई।

जापानी सिनेमा को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिलाने वाली श्रीमती कावाकिता ने 'पाथेर पांचाली' को विश्व सिनेमा की सबसे महान् फिल्म बताया था सन् 1955 में। फिल्म को 'मानवीय दस्तावेज' बताते हुए केन्स फिल्म समारोह में 'पाथेर पांचाली' को प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। 1957 ई. में सानफ्रांसिस्को फिल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ निर्देशन का पुरस्कार प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं, इस फिल्म को बारह अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किये गए। इतने पुरस्कार प्राप्त करने के बाद यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि माणिक दा ने अपने इस कथन को सत्य करके दिखा दिया, जो उन्होंने सन् 1948 ई. में अपने

किसी दोस्त से कहा था—''किसी दिन मैं एक महान् फिल्म बनाऊंगा।''

सत्यजित रे की दूसरी फिल्म थी—'अपराजिता'। इस फिल्म को वेनिस फिल्म समारोह में सेंटमार्क का 'स्वर्ण सिंह' प्रदान किया गया। मुंशी प्रेमचन्द की कहानी पर आधारित फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' रे की प्रथम हिन्दी फिल्म थी। इस फिल्म को भी कई राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए। अगले तीन दशकों में फिल्म-निर्माता के रूप में उनकी उपलब्धियाँ अत्यन्त प्रशंसनीय रहीं। उनमें निर्देशक, कला-निर्देशक, और कथा-लेखक के गुणों का भरपूर विकास हुआ। साथ ही कुछ फिल्मों में उन्होंने संगीतकार की भूमिका का भी सफल निर्वाह किया था। कथा-अकथा और बाल साहित्य लेखक के रूप में भी माणिक दा का नाम किसी से छिपा नहीं है। उनकी 'फेलूदा', 'सोनार किला', 'बक्सा रहस्य', 'प्रोफेसर शोंकू', 'विषय चल-चित्र', 'एकई बोले शूटिंग', और 'जब मैं छोटा था', आदि कृतियां साहित्य जगत में उल्लेखनीय हैं। आपकी सेवाओं को मद्देनजर रखते हुए भारत सरकार ने आपको सन् 1959 ई. पद्म श्री, 1965 ई. में पद्मभूषण और सन् 1976 ई. में पद्म विभूषण' अलंकरणों से सम्मानित किया।

1961 ई. तंक रे ने सात कथा-चित्र, तीन वृतचित्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर की जीवनी पर आधारित फिल्म

का निर्माण कर लिया था। यह उनकी प्रतिभा का ही चमत्कार है कि सन् 1971 ई. तक माणिक दा 30 से भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों के विजेता बन गए थे। फिल्म जगत् में रे के इस महत्वपूर्ण योगदान की विदेशों में भी खुले दिल से प्रशंसा की गई। 5 जुलाई, 1974 ई. को ब्रिटेन के 'रॉयल कॉलिज ऑफ आर्टस' ने आपको 'डॉक्टरेट' की मानद उपाधि प्रदान की। 1978 ई. में 'ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय' ने भी 'डॉक्टरेट' की मानद उपाधि से विभूषित किया। इस विश्वविद्यालय के प्रशस्ति पत्र में लिखा था—"श्री रे ने भारत की महानता को दर्शकों के सामने उजागर किया है।"

सत्यजित रे की जिन फिल्मों को श्रेष्ठ पुरस्कार मिले हैं, उनमें 'पाथेर पांचाली' (1955), 'अपराजिता' (1956), 'पारस पत्थर' (1957), 'जल सागर' (1958), 'अपूर संसार' (1959), 'देवी' (1960), 'रवीनद्रनाथ टैगोर' (1961), 'तिन कन्या' (1961), 'कंचन जंघा' (1962), 'अभिज्ञान' (1962), 'महानगर' (1963), 'चारूलता' (1964), 'कापुरुष ओ महापुरुष' (1965), 'नायक' (1966), 'चिड़िया खाना' (1969), 'सोनार किला' (1973), 'शतरंज के खिलाड़ी' (1977) 'जय बाबा फूलेनाथ' (1978), 'हीरक राजार देशे' (1980), 'आगन्तुक' (1991) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सत्यजित रे तीन बार भारतीय फिल्म महोत्सव के जूरी

के सदस्य बने। साथ ही मास्को, बर्लिन और केन्स में हुए अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में भी आपको जूरी का सदस्य बनाया गया।

1989 ई. में श्री रे को फ्रांस का सर्वोच्च नागरिक अलंकरण 'लीजन डी ऑनर' प्रदान कर सम्मानित किया गया। 1991 ई. में हालीवुड ने भी श्री रे को फिल्मी दुनिया के सबसे बड़े पुरस्कार **'विशेष आस्कर'** से सम्मानित किया। अस्वस्थ होने के कारण आप यह पुरस्कार अमेरिका जाकर न ले सके। तब 'आर्ट ऑफ मोशन पिक्चर्स' के दो अमेरिकी प्रतिनिधियों ने 1992 ई. में उन्हें कलकत्ता के अस्पताल में जाकर यह पुरस्कार भेंट किया था। इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाले श्री सत्यजित रे भारत की पहली फिल्मी हस्ती हैं।

इसके बाद मार्च 1992 ई. में भारत सरकार ने आपको सर्वोच्च उपाधि **'भारत रत्न'** देने की घोषणा की, जो कि भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने स्वयं कलकत्ता जाकर भेंट की, क्योंकि श्री रे लगातार अस्वस्थ चल रहे थे।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, सिनेमा जगत् में भारत को अन्तर्राष्ट्रीय स्थान दिलाने वाले महान् फिल्म निर्माता, निर्देशक, कला मर्मज्ञ, चित्रकार, कहानीकार एवं संगीतकार 23 अप्रैल 1992 ई. को संसार से विदा हो गये।

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO... 110667
DATE... 17.2.2003
SHIMLA

व्यवसायियों के मसीहा—डॉ. शांति स्वरूप भटनागर

साधारण परिवार में जन्म लेकर जीवन से संघर्ष करते हुए, सफलता के उच्च शिखर पर पहुंचना, किसी भी व्यक्ति के लिए गौरव की बात है। डॉ. शांति स्वरूप भटनाकर ऐसे ही चुनिंदा महान् व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने अपनी उन्नति के साथ-साथ अपने देश की कीर्ति-पताका को भी देश देशान्तरों में फहराया तथा सहस्त्रों भारतीय युवकों के लिए वैज्ञानिक शोध का मार्ग प्रशस्त किया। वे राष्ट्रीय विकास के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य को अत्यन्त आवश्यक मानते थे और इस बात पर बल देते थे कि विज्ञान से समाज को तभी लाभ मिल सकता है जबकि एक योजना के अनुसार कार्य किया जाए।

डॉ. भटनाकर का जन्म 21 फरवरी 1894 को पंजाब में हुआ था। उनके पिता लाला परमेश्वरी सहाय थे। शांति स्वरूप बचपन से ही पढ़ने-लिखने में तेज थे। आठवीं कक्षा में वह प्रथम आये और उन्होंने सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त कर ली थी। बचपन से ही विज्ञान में उनकी विशेष रूचि थी। स्कूल में पढ़ते हुए वे कबाड़ियों के यहाँ से कुछ पैसों में विज्ञान सम्बन्धी साधारण सामान खरीद लाया करते थे और कुछ न कुछ बनाया करते थे। एक बार उन्होंने खेल-खेल में टेलिफोन बना लिया था। सन् 1911 में उन्होंने हाईस्कूल परीक्षा प्रथण श्रेणी में उत्तीर्ण की।

शांति स्वरूप ने अब दयालसिंह कॉलेज में दाखिला लिया। कॉलेज में अध्ययन करते समय वह प्रोफ़ेसर रूचिराम साहनी जो कि रसायन विज्ञान के अच्छे विद्वान थे, के सम्पर्क में आये। उनकी देख-रेख में अध्ययन करते हुए पहले ही वर्ष उनकी भेंट विज्ञानाचार्य जगदीश चन्द्र बसु से हो गई। आचार्य बसु ने सब छात्रों में से शांति स्वरूप को अपने प्रयोगों में मदद के लिए चुना। इस से शांति स्वरूप का उत्साह दुगुना हो गया।

इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद शांति स्वरूप का विवाह लाजवन्ती देवी से हो गया। विवाह के बाद भी उन्होंने अध्ययन चालू रखा। बी.एस-सी. और एम. एस-सी. की परीक्षाएं सम्मान पूर्वक पास कीं।

एम.एस-सी. की परीक्षा पास करने के बाद वह कुछ दिन तक मिशन कॉलेज और दयाल सिंह कॉलेज में मामूली वेतन पर डिमांस्ट्रेटर का काम करते रहे, लेकिन वे विलायत जाकर रसायन शास्त्र का विशेष अध्ययन करना चाहते थे। किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी। अनेक प्रयत्नों के फलस्वरुप 1919 में दयाल सिंह कॉलेज ट्रस्ट से विलायत जाकर अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति मिल गई। वे लंदन यूनीवर्सिटी के साइन्स कॉलेज में भर्ती हो गये और प्रो. एम. जी. डोनन की देख-रेख में अनुसंधान प्रारम्भ कर दिया। प्रो. डोनन उनके कार्य से प्रभावित हुए। शीघ्र ही उन्होंने अपनी योग्यता के बल पर

प्रिविकौन्सिल के साइन्टीफिक और इन्डस्ट्रियल रिसर्च डिपार्टमेन्ट की ओर से दी जाने वाली 300 रुपये मासिक की छात्रवृत्ति प्राप्त कर ली। दो वर्ष में ही उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से डी. एस-सी. की उपाधि प्राप्त कर ली। यहीं डॉ. मेघनाद साहा से उनकी भेंट हुई और दोनों भारतीय वैज्ञानिकों की यह मित्रता भारत की वैज्ञानिक प्रगति के लिए उपयोगी बनी।

भारत लौटने पर वे काशी विश्वविद्यालय में 500 रुपये मासिक पर रसायन के यूनीवर्सिटी प्रोफेसर नियुक्त हो गये। 1924 में पंजाब विश्वविद्यालय ने उन्हें अपनी प्रयोगशाला में रसायन के अन्वेषण कार्य का संचालन करने के लिए आग्रह-पूर्वक बुला लिया। पंजाब विश्वविद्यालय पहुंचने पर उनकी प्रतिभा और चमक उठी। अपने सहयोगियों के साथ उन्होंने जो महत्वपूर्ण अन्वेषण किये उससे उनकी गणना संसार के उच्चकोटि के रासायनिकों में की जाने लगी। उनके कुछ अन्वेषण उद्योग-धंधों के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। इससे वह पंजाब और अन्य भारत के व्यवसायियों में विशेष रूप से प्रसिद्ध हो गये। सर गंगाराम, सर श्रीराम, श्री जी. डी. बिरला जैसे बड़े-बड़े व्यवसायी अपनी औद्योगिक समस्याओं के लिए उनसे परामर्श लेने लगे। पंजाब के मिट्टी के तेल के कारखानों ने उनके अन्वेषणों से लाखों रुपये का लाभ उठाया। पंजाब की अटक ऑयल कम्पनी ने उन्हें इस उपलक्ष्य में डेढ़ लाख रुपया दिया किन्तु

उन्होंने इस रकम को पंजाब विश्वविद्यालय को दान कर दिया और विश्वविद्यालय में पेट्रोलियम सम्बन्धी अनुसंधान के लिए एक अलग विभाग कायम करवाया।

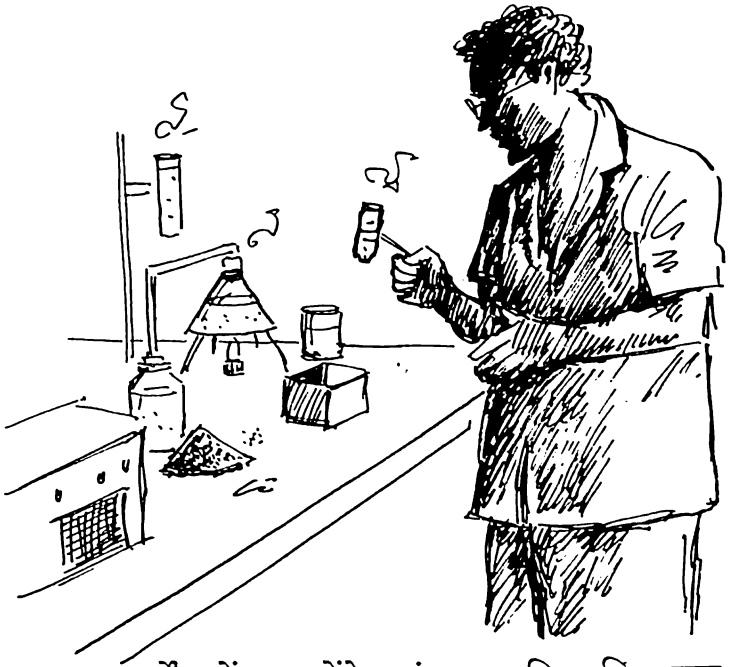

दस वर्षों में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय की रसायनशाला को बहुत अच्छी तरह संगठित व सुव्यवस्थित कर लिया। स्टील ब्रदर्स के साथ उन्होंने अपने अन्वेषणों को पेटेन्ट कराया। उनमें दो उल्लेखनीय हैं। एक तो मिट्टी के तेल की रोशनी करने की क्षमता बढ़ाना और दूसरा बिना गंध की मोम तैयार करना। बड़े-बड़े मिलों और कारखानों के कूड़े-करकट को काम में लाने के लिए भी उन्होंने उल्लेखनीय काम किया। उन्होंने कपड़ा मिलों के गूदड़ से

पश्मीना सिल्क बनाने की तरकीब निकाली। दिल्ली के व्यवसायी श्रीराम ने इस विधि के पेटेन्ट का अधिकार ले लिया। इसी प्रकार उन्होंने जूट के गूदड़ और बिनौले के तेल से बेकलाइस आदि कई उपयोगी चीजें तैयार करने की रीतियां निकालीं। इनमें कांच के समान तथा पारदर्शक प्लास्टिक तैयार करना विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ। वनस्पति तेलों के बारे में उन्होंने बहुत से उपयोगी अनुसंधान किये। महायुद्ध के दिनों में जब यहाँ विदेशी खनिज तेलों का आयात कम हो गया था, तब उन्होंने रेलगाड़ियों की धुरियों को चिकनाने के लिए एक्सिल आइल सरीखे वनस्पति तेलों का मिश्रण तैयार किया था।

इसी प्रकार शीरे से टाइल्स और विद्युत अवरोधक पदार्थ भी तैयार किये गये। चावलों के चूरे और ऐसी कनी को जो काम में नहीं ली जा सकती है को फिर से चावलों का रूप देने में भी वे सफल हुए। साबुन में रंग और गंध को स्थायी बनाने में भी उनके प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुए। उन्होंने रसायन विज्ञान एवं उद्योग की विभिन्न समस्याओं पर अनुसंधान करके लगभग पौने दो सौ मौलिक वैज्ञानिक शोध-निबन्ध प्रकाशित कराये। वास्तव में उन्होंने विज्ञान के माध्यम से देश की अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवाएं की। उनकी प्रतिभा और विद्वता से आकर्षित होकर दूर-दूर से विद्यार्थी उनके पास अध्ययन और अनुसंधान करने आते थे। संसार के अन्य श्रेष्ठ वैज्ञानिकों के सामने उनकी शिष्य मण्डली ने

भी विज्ञान की बड़ी महत्वपूर्ण सेवा की।

डॉ. भटनागर के चुम्बकीय रसायन और प्रकाश रसायन सम्बन्धी मौलिक कार्यों की दुनिया भर में प्रशंसा हुई। इन कार्यों से प्रभावित होकर इंग्लैंड की रॉयल सोसायटी ने उन्हें अपना 'फेलो' मनोनीत किया। सन् 1936 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें ओ.बी.ई. की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। सन् 1941 में उन्हें 'सर' की उपाधि मिली। सन् 1954 में भारत सरकार ने **'पद्म विभूषण'** की उपाधि दी। बनारस, लखनऊ, आगरा आदि विश्वविद्यालयों ने उन्हें 'डॉक्टर ऑफ साइन्स' की उपाधि से सम्मानित किया। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने भी उन्हें 'डॉ. ऑफ साइन्स' की उपाधि से सम्मानित किया। वह भारत विज्ञान कांग्रेस के सभापति भी मनोनीत किये गये। लंदन की विश्व प्रसिद्ध 'केमिकल सोसायटी' ने उन्हें अपना 'फेलो' मनोनीत किया। इंग्लैंड की इन्स्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स ने भी उन्हें अपना 'फेलो' बनाया था। लंदन की सुप्रसिद्ध संस्था 'फेराडे सोसायटी' के भी वह सम्मानित सदस्य रहे।

1 जनवरी 1955 ई. को अपने नई दिल्ली के निवास स्थान पर हृदय गति रूक जाने से उनका निधन हो गया। भारत सरकार ने उनकी स्मृति में **'शांति स्वरूप भटनागर'** पुरस्कार देने की स्थायी व्यवस्था की। यह पुरस्कार वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा प्रति वर्ष भारत के श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों को दिया जाता है।

परमाणु शक्ति के जन्मदाता—डॉ. होमी जहांगीर भाभा

वैज्ञानिकों की रुचि प्रायः कला में नहीं होती। संगीत, साहित्य, चित्रकला आदि से उनका कोई सरोकार नहीं होता। डॉ. होमी जहांगीर भाभा ऐसे वैज्ञानिकों में से थे जिनमें बहुमुखी प्रतिभा थी। भाभा का जन्म बम्बई के एक सभ्य एवं सुसंस्कृत पारसी परिवार में 30 अक्तूबर 1909 ई. में हुआ था। उनके पिता एवं दादा दोनों ही उच्चपदाधिकारी थे। सुसंस्कृत और प्रतिष्ठित परिवार होने के कारण उनको बड़े-बड़े लोगों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता रहा।

डॉ. भाभा की बुद्धि प्रारम्भ से ही बड़ी कुशाग्र थी। 15 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने केथेड्रल हाईस्कूल से सीनियर केम्ब्रिज की परीक्षा पास कर ली। 1926 ई. में एफ.आई.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। बम्बई विश्वविद्यालय की आई.एस-सी. की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में पास की। 1939 ई. में इन्जीनियरिंग ट्राईपास का द्वितीय खंड प्रथम श्रेणी में पास किया। अब उनके मन में सैद्धान्तिक भौतिकी विज्ञान के अध्ययन का विचार आया और उसमें पूरी लगन के साथ जुट गये। डॉ. भाभा ने सभी छः विषयों का अध्ययन किया और अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए। 31 वर्ष की आयु में उन्हें विश्व का वैज्ञानिक सम्मान एफ.आर.एस. मिला। उनकी असाधारण

मेधाशक्ति की छाप शिक्षा जगत पर पड़ी। फलतः कॉलेज के अधिकारियों ने उन्हें आगे के अध्ययन के लिए 2 वर्ष की एक विशिष्ट छात्रवृत्ति प्रदान की। सन् 1932 में उन्हें ट्रिनिटी कॉलेज से उच्च गणित का अध्ययन के लिए दूसरी छात्रवृत्ति मिली। इसी समय उनको यूरोप की यात्रा तथा वहाँ रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। एक वर्ष तक वे ज्यूरिच में प्रो. डब्ल्यू पॉली के पास रहकर गणित का अध्ययन करते रहे। यहीं उन्होंने अपना पहला शोध प्रबन्ध तैयार किया। इस प्रबन्ध में उन्होंने अनेक मौलिक बातें वैज्ञानिकों के सामने रखीं। मौलिकता की दृष्टि से यह प्रबन्ध उच्चकोटि का माना जाता है।

सन् 1936 से 1938 के बीच का समय उन्होंने कोपन हेगन की नील्सबोर की भौतिक विज्ञानशाला में व्यतीत किया। वहाँ उन्होंने भौतिक विज्ञान में शोध कार्य किया। विज्ञान के क्षेत्र में उनके कार्यों को देखकर सन् 1941 में इंग्लैंड की रॉयल सोसायटी ने उनको अपना सदस्य निर्वाचित किया। अब वह दुनिया के विशिष्ट वैज्ञानिकों में गिने जाने लगे। सन् 1951 में वह भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सभापति चुने गए।

डॉ. भाभा को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दुनिया के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिलता रहा। अणुशक्ति का उपयोग दुनिया की शान्ति और समृद्धि के लिए हो, इस काम को उन्होंने उठाया और उस दिशा में

पूरी शक्ति से लग गए। सन् 1948 में वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का एक बोर्ड 'अणुशक्ति आयोग' के नाम से बनाया गया। इसके अध्यक्ष डॉ. भाभा थे। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्री जवाहर लाल नेहरू की देख-रेख में परमाणु शक्ति के क्षेत्र में जो उल्लेखनीय कार्य हुआ उसका श्रेय डॉ. भाभा को ही है।

भारत जैसे नव स्वतंत्र निर्धन देश के लिए परमाणु शक्ति की आवश्यकता एवं उयोगिता पर बल देते हुए डॉ. भाभा ने कहा था—"भारत के पास विकास के मार्ग पर बढ़ने के लिए केवल प्राकृतिक साधन हैं, जो दिनोंदिन कम होते जा रहे हैं। हमारे देश में कोयले का कुल भण्डार एक सौ टन प्रतिजन से अधिक नहीं है। तेल के भण्डार तो कोयले से भी कम हैं। भारत अपने तेल और पानी आदि के प्रचलित साधनों से उस जीवन-स्तर को भी नहीं प्राप्त कर सकता जो आज अमेरिका या ब्रिटेन आदि देशों में एक सामान्य बात बन चुका है। भारत के लिए एक मात्र उपाय रह जाता है कि वह अधिकाधिक परमाणु शक्ति का उपयोग करे। भारत में अणु शक्ति का इतना बड़ा भंडार है कि शायद ही कोई देश उसका मुकाबला कर सके।"

भारत थोरियम (यूरेनियम का आइसोटोप U_{233}) के मामले में विश्व में सबसे अधिक सम्पन्न है। इस सम्बन्ध में तीन प्रकार के रिएक्टर बनाने का कार्यक्रम बनाया गया जो विद्युत पैदा करने के अलावा अन्य रिएक्टरों के

लिए ईंधन भी तैयार करेंगे।

बम्बई के निकट ट्राम्बे में आज जो थोरियम प्लान्ट बना हुआ है, वह डॉ. भाभा के ही परिश्रम का फल है। यह दुनिया के सबसे बड़े अणु संयन्त्रों में से एक है। इसका निर्माण डॉ. भाभा के मार्ग-दर्शन में पूरी तरह भारतीय वैज्ञानिकों ने ही किया है। यह न केवल एशिया के गैस मैटल उद्योग की आवश्यकता पूर्ति करता है बल्कि यूरोप और अमेरिका में भी इसके ग्राहक हैं। इससे करोड़ों रुपयों की विदेशी मुद्रा अर्जित की गई है।

जेरालीन का निर्माण भी पूर्णतः भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने ही किया है। डॉ. भाभा का इसमें बड़ा हाथ है। 14 जनवरी 1961 से इसने काम करना प्रारम्भ किया। उस समय यह केवल 100 वाट बिजली का उत्पादन करता था। बाद में धीरे-धीरे इसकी क्षमता बढ़ाई गई। प्रथम आणविक संयन्त्र की स्थापना बम्बई से 62 मील उत्तर की ओर तारापुर में की गई। इसकी क्षमता 380 मेगावाट है। दूसरा संयन्त्र कनाडा की सहायता से राणा प्रताप सागर (राजस्थान) में बनाया गया है, जबकि तीसरा संयन्त्र नरौरा में स्थापित किया गया है।

डॉ. भाभा के मार्गदर्शन में अणुशक्ति प्रतिष्ठान में लगभग डेढ़ हजार वैज्ञानिक अणुशक्ति का प्रयोग देश की समृद्धि के लिए करने में लगे रहे। सन् 1956 ई. में जब एशिया के पहले रिएक्टर का उद्घाटन श्री नेहरू ने किया तब डॉ.

भाभा एवं उनके द्वारा प्रशिक्षित अनेक दूसरे भारतीय वैज्ञानिकों की इस महती सफलता ने उन्हें भावुक बना दिया था। उन्होंने उस अवसर पर कहा था —"हमारे देश के तरुण वैज्ञानिकों ने डॉ. भाभा के नेतृत्व में परमाणु शक्ति के शांतिकालीन उपयोग की दिशा में जो काम किया है उससे विश्वास जाग्रत होता है कि निकट भविष्य में ही सारा संसार प्रेरणा पाकर इस दिशा में अग्रसर होगा।

सन् 1964 ई. में डॉ. होमी जहांगीर भाभा को **'पद्म भूषण'** की उपाधि से विभूषित किया गया। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. लाल बहादुर शास्त्री ने उन्हें मन्त्रीमंडल में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया, किन्तु डॉ. भाभा ने उसे स्वीकार नहीं किया। वास्तव में विज्ञान ही उनके लिए सब कुछ था। विज्ञान की उपासना छोड़कर राजनीति और प्रशासन में जाना उन्होंने पसन्द नहीं किया।

20 जनवरी 1966 के दिन भारत का एक यात्री विमान आल्प्स पहाड़ी के फ्रांसीसी हिस्से में माउण्ट ब्लैक के ऊपर उड़ता हुआ क्षतिग्रस्त हो गया। जिसमें डॉ. भाभा यूरोप की यात्रा कर रहे थे। डॉ. भाभा सहित विमान के सभी 117 यात्री मृत्यु की गोद में समा गये। एक उच्चकोटि के भारतीय वैज्ञानिक के अन्त का समाचार सुनकर दुनिया भर में शोक की लहर दौड़ गई। भारत को तो उनके निधन से ऐसी क्षति हुई जिसका पूरा होना असंभव है।

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 10667
DATE 17.2.2003
SHIMLA

Library IIAS, Shimla
H 028.5 P 882 P
00110667